ISSN: 2456-947X, Vol. I, Issue. II, Sept-2017

अनघ

(An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

विभाजन, निर्वासन, पुनःस्थापन और अस्मिता संकट की अभिव्यक्ति आधुनिक सिन्धी कविता

डॉ. विम्मी सदारंगाणी
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, सिन्धी विभाग
तोलानी आर्ट्स व साइंस कॉलेज
आदिपुर (कच्छ) गुजरात
vimmi.sadarangani@gmail.com

शोध-सार -सिन्धी विभाजन साहित्य की प्रमुख विशेषता है उसमें निहित विभाजन के दर्द के अलावा तत्कालीन सिन्ध में हिन्दू मुस्लिम सौहार्द, सिन्ध से सिन्धी हिन्दुओं के निर्वासन के बाद भारत में उनका पुनःस्थापन्न का संघर्ष, आत्मसम्मान का भाव और मातृभूमि की स्मृति। सिन्धी विभाजन-साहित्य में वतन प्रेम, भाईचारे और इंसानियत की झलक गहरी है चाहे वह भारत में रचा गया हो या सिन्ध में। स्नेह, प्रेम और कृतज्ञता का यह चित्रण इतिहास के उस काले पन्ने पर श्वेत कपोत के समान है। प्रस्तुत आलेख में भारत विभाजन के सिन्धी जाति पर प्रभाव और सिन्धी विभाजन की संक्षिप्त जानकारी देते हुए, आधुनिक सिन्धी कविता में सिन्धी समुदाय के संदर्भ में विभाजन, निर्वासन, पुनःस्थापन और अस्मिता संकट की अभिव्यक्ति का परिचय दिया गया है।

I. प्रस्तावना

भाषाविज्ञानी और कहानीकार सतीश रोहरा के अनुसार, 'भारत विभाजन विश्व इतिहास की प्रमुख घटना हो या न हो, सिन्धी जाति के जीवन में घटित एक अत्यंत अहम और दर्दनाक घटना है जिसने सिन्धी जाति को दो भागों में विभाजित कर, दो देशों में बांट दिया है तथा संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से एक 'पूर्ण जाति' को दो अपूर्ण जातियों में विभक्त कर दिया है।'[1]

II. भारत विभाजन का सिन्धी जाति पर प्रभाव

1947 में भारत को ब्रिटिश राज से स्वतंत्रता प्राप्त हुई परंतु इसके साथ ही इतिहास व राजनीति ने जैसे सांठगांठ करते हुए दोहरी चाल चली। देश को आज़ाद नक़्शा तो मिला, साथ ही एक नई सरहद भी मिली, पाकिस्तान के रूप में। धर्म के आधार पर हुए इस बंटवारे के कारण सिन्ध प्रदेश, पाकिस्तान का भौगोलिक हिस्सा बन गया और सिन्ध से लाखों हिन्दू सिन्धी अपनी मातृभूमि को छोड़ भारत का हिस्सा बन गए और कई दुनिया में इधर उधर बस गये। उस वक्त यह समझा गया कि विभाजन अस्थायी है और कुछ महीनों में जैसे ही स्थिति सुधरेगी, सभी अपने-अपने घर लौट आएंगे। पाकिस्तान से आए सिखों और मुसलमानों के लिए भारत में पंजाब और उत्तरप्रदेश था जबकि सिन्धियों के लिए मात्र कोरे दिलासे थे। 'रहने को घर नहीं और सारा जहां हमारा' की स्थिति में सिन्धी प्रजा के जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ।

वतन से बिछुड़ना; नई ज़मीन पर पाँव जमाने की कोशिश; कैंप्स और बैरक की कठिन ज़िंदगी; स्थानिक समुदायों का असहकार और तिरस्कार;

नई संस्कृति; नया परिवेश; आर्थिक के साथ साथ सामाजिक और सांस्कृतिक असंतुलन आदि प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद सिन्धी जाति ने स्वयं को 'शरणार्थी' से 'पुरूषार्थी' के स्तर तक पहुँचाया। 1947 के बाद के लगभग बीस-पच्चीस वर्ष सिन्धी प्रजा के लिए जीवनयापन के संघर्ष का दौर था। फिर रोज़ी रोटी कमाने की कशमकश के साथ, सांस्कृतिक अस्मिता बचाए रखने की कोशिशें तेज़ हुईं। लेखक समूह ने हिम्मत नहीं हारी; अपनी क़लम फिर से हाथ में थामी और अहसास को काग़ज़ पर उतारा। ज़िंदगी के इस संघर्ष के साथ ही, सिन्धी भाषा और संस्कृति को बचाने की मुहिम भी प्रारंभ हो गई। गुजरात और महाराष्ट्र में बड़ी संख्या में सिन्धी माध्यम के स्कूल शुरू किए गए। रात्रिशालाएं आरंभ हुई। साहित्यिक संस्थाएं, नाटक ग्रुप बने; गीत, संगीत के कार्यक्रम, साहित्य गोष्ठियां, साहित्यिक गतिविधियां ज़ोरशोर से होने लगीं। सिन्धी भाषा को संवैधानिक दर्जा दिलाने के लिए मुहिम शुरू हुई, धरने दिए गए और भूख हड़तालें भी हुई। आखिर 10 अप्रैल 1967 को, चेटीचंड अर्थात् सिन्धी नववर्ष के दिन, विश्व की प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता की गोद में पली-बढ़ी, भारतीय-आर्य परिवार की भाषा सिन्धी को भारतीय संविधान की आठवीं सूचि में मान्यता प्राप्त हुई। मगर बात यहां समाप्त नहीं होती। भाषा को मान्यता मिली तो लिपि का झगड़ा शुरू हुआ। साहित्यकारों और विद्वानों का एक समूह सिन्धी के लिए, प्रचलित अरबी-सिन्धी लिपि को उचित मानता था तो दूसरा समूह इस सिन्धी लिपि को इस्लामिक मानते हुए, देवनागरी लिपि का पक्षधर था। शायद 'भारतीयता' दिखाने का एक यह भी तरीक़ा था, हालांकि देवनागरी के पक्षधर भी साहित्य रचना तो अरबी-सिन्धी लिपि में ही करते थे। ख़ैर, भारत सरकार ने सिन्धी के लिए दोनों लिपियों को मान्यता दी। तब लगा कि अब इस भाषा को कोई ख़तरा नहीं है परंतु यह गणित भी ग़लत साबित हुआ क्योंकि विभाजन के अन्य असर, विभाजन के इतने वर्षों बाद प्रगट हो रहे हैं।

सिन्धी भारत में बस तो गए, पर किसी केंद्रित भौगोलिक विस्तार के न होने से, तितर-बितर भी हो गए। आज़ादी, उस समय सिन्धियों के लिए एक कड़वा फल साबित हुआ। खुशी का यह मौका, सिन्धी जाति के लिए ग़म भी लाया। उसकी एक वजह तो विभाजन ही था, दूसरा था उससे जुड़ी खुशफहमियों का गलतफहमी साबित होना। विभाजन के जो सबसे मारक प्रभाव हुए, उन में से कुछ हैं विशिष्ट अभिव्यक्ति के साधनों का ह्रास, ग्रामीण अंचल का अभाव, विच्छिन्नता, संपर्क का अभाव, वैवाहिक और पारिवारिक संबंध में सुदृढ़ता की कमी, भाषाप्रयोग क्षेत्र का संकुचन, लिपि-विभाजन का विपरीत प्रभाव। विभाजन का प्रभाव सिन्ध के सिन्धियों पर भी पड़ा। वहां रह रहे अल्पमत हिंदू सिंधी भी अस्मिता और अन्य कई संकटों से दू-ब-दू हो रहे हैं। सिन्धी के संदर्भ में भौगोलिक विभाजन ने, जाति विभाजन, भाषा विभाजन, संस्कृति विभाजन को भी जन्म दिया है।

भारत-विभाजन का प्रभाव सिन्धी जाति के भूतकाल, वर्तमान और भविष्य तीनों पर ही स्पष्टतः परिलक्षित हो रहा है जिसका प्रतिबिंब सिन्धी विभाजन साहित्य में भी दृष्टिगोचर होता है।

III. सिन्धी विभाजन साहित्य

गंगा-सिन्धु संस्कृति का प्रतीक सिन्धी भाषा-साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं-साहित्य की भांति विकसित है परंतु मुख्य धारा में होते हुए भी जैसे हाशिये पर रहा है। इसका मुख्य कारण उत्तम साहित्य के अनुवाद का अभाव माना जा सकता है। कविता और कहानी, सिन्धी साहित्य की सशक्त विधाएं हैं।

विभाजन के प्रभावस्वरूप भारत में हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, अंग्रेजी आदि भाषाओं में विभाजन साहित्य रचा गया है जिस पर पर्याप्त मात्रा में शोधकार्य भी हुआ है। विभाजन का दर्द सिन्धी साहित्य में भी उभरा परंतु भाषा, लिपि और अनुवाद संबंधित विभिन्न समस्याओं के कारण, यह जनसाधारण तक पहुँच नहीं पाया है। अनुवाद के लिहाज़ से अंग्रेजी में दो उल्लेखनीय संग्रह उपलब्ध हैं - साहित्य अकादमी द्वारा अंग्रेज़ी में प्रकाशित कविता संग्रह 'फ्रीडम एंड फिशर्स' 1998, तथा पेंग्विन द्वारा प्रकाशित विभाजन कहानी संग्रह 'अनबॉर्डरड मेमोरीज़' 2009।

सिन्धी भाषा में बँटवारे के दर्द, मातृभूमि सिन्ध की याद, भारत में प्रारंभिक कशमकश के समय पर आधारित भरपूर साहित्य सृजन हुआ है। सिन्धी कविता, कहानी और उपन्यास में विभाजन की विभषिका से उपजी विविध परिस्थितयां, समास्याएं और दुख दर्द इंगित होते हैं। आत्मकथाओं और संस्मरणों में भोगा हुआ दुख और संताप झलकता है। उर्दू और पंजाबी में रचित विभाजन साहित्य आँसू भरी व्यथा है और कई बार रोंगटे खड़े कर देने की क्षमता रखता है। सिन्धी साहित्य इस दृष्टि से कुछ भिन्न है क्योंकि विभाजन के दर्द के अलावा सिन्धी विभाजन साहित्य के कुछ निराले पहलू है, हिन्दू मुस्लिम सौहार्द और उसका मानवीय पक्ष, पुनःस्थापन्न का संघर्ष, आत्मसम्मान का भाव, मातृभूमि की स्मृति आदि। धार्मिक भिन्नता के बावजूद, भाषा की समानता ने हिन्दुओं और मुसलमानों को भाईचारे की डोर में बांधे रखा। शायद यही कारण है कि कुछ हिंसा और लूटपाट की घटनाओं को छोड़कर, सिन्ध विनाशकारी मारकाट और दंगों की चपेट में आने से लगभग बच गई। शायद इसी वजह से सिन्धी विभाजन-साहित्य में वतन प्रेम, भाईचारे और इंसानियत की झलक गहरी है चाहे वह भारत में रचा गया हो या सिन्ध में। स्नेह, प्रेम और कृतज्ञता का यह चित्रण इतिहास के उस काले पन्ने पर शांति कपोत के समान है।

विभाजन संबंधित विषयों पर सृजित साहित्य में लेखराज अज़ीज़, परसराम ज़िया, हरि दिलगीर, एम कमल, नारायण श्याम, अर्जुन हासिद, अर्जुन शाद, वासुदेव मोही, मोती प्रकाश, कृष्ण खटवाणी, कृष्ण राही, इंद्र भोजवाणी, नंद जवेरी, पोपटी हीरानंदाणी, अमर जलील, नसीम खरल, नजम अब्बासी, गुलज़ार अहमद, इब्राहीम जोयो, शौकत शोरो, हैदर बख़्श जतोई, तनवीर अब्बासी, नियाज़ हुमायूंनी, सुगन आहूजा आदि की काव्य रचनाएं; नारायण भारती, मोहन कल्पना, कला प्रकाश, गोबिंद माल्ही, कीरत बाबाणी, सुंदरी उत्तचंदाणी, हरि मोटवाणी, हरीश वासवाणी, का कथा साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। उस दौर के लेखकों के अलावा यहां जन्में

लेखकों ढोलण राही, हरीष करमचंदाणी, महेश नेणवाणी, रश्मि रमाणी, मोहन हिमथाणी, विम्मी सदारंगाणी आदि की रचनाओं में भी सिंध के प्रति स्नेह और लगाव के साथ असमंजस की स्थिति भी दिखाई देती है। वरिष्ठ लेखकों की रचनाओं के साथ इन युवा लेखकों की रचनाओं का अवलोकन भी आवश्यक है ताकि यह जांचा जा सके कि क्या ये भी वरिष्ठ लेखकों की तरह एक अलग दुनिया में जीते हैं या वर्तमान परिस्थितियों को अपने नज़रिये से देखते हैं।

IV. मातृभूमि स्मरण से अस्मिता के संकट तक सिन्धी कविता

सिन्धी कविता में विभाजन संबंधित स्वर कभी खामोश हैं, कभी कराहते हुए, कभी चीखते हुए, कभी घूरते हुए, कभी झिंझोड़ते हुए तो कभी विद्रोह करते हुए। सिन्धी कविता में जहां यह सब इशारों और तीखे तीरों जैसा है तो कहानी में तानेबाने में बुना। दोनों का स्वर एक-सा होते भी अलग असर छोड़ता है।

विभाजन आधारित सिन्धी कविताओं में सिन्ध स्मरण, विभाजन का दर्द, विस्थापन्न की तकलीफें, पुनःस्थापन का संघर्ष आदि भावनाओं और विचारों का वर्चस्व है। कभी दर्द तो कभी शिकायत, कभी घुटन तो कभी कसक की अभिव्यक्त करती ये कविताएं पाठक के दिल को छूती हैं। मातृभूमि सिन्ध का स्मरण करते अनगिनत काव्य रचनाएं हुई हैं। कवियों ने अपने देश सिन्ध, सिन्धु नदी, गांव, बस्ती, गली मोहल्ले, खाना पीना, खेत खलिहान, यार दोस्त सबकी यादों को संजोये रखा है। भारत में रहते हुए, अपने जन्मस्थान से दूरी का अहसास इन कविताओं में कभी आंसू बनकर आया है तो कभी लाचारी बनकर और कभी दिवास्वप्न बनकर। अश्रुपूर्ण आंखों से धुंधली यादों में जीते कवि अर्जुन हासिद ने लिखा -

धुंधली आंखें ये देख ले 'हासिद'
पुराना सिन्ध का नक़्शा हूं। [2]

सिन्धी समाज के प्राणों में समाई सिन्धु नदी को गंगा के घाट पर कवि इंद्र भोजवाणी याद करते हैं-

जल सिंधु का पीकर, जपा मैंने गंगा का नाम,

आज गंगा किनारे मैं, क्या भूल जाऊं सिंधु को? [3]

सिन्ध, सिन्धियों के लिए मात्र एक भौगोलिक प्रदेश नहीं बल्कि उनके इतिहास, संस्कृति और जीवन का प्रतीक है, सिन्धियत का प्रतीक है। इसीलिए नारायण श्याम ने कहा कि जहां सिन्धी है, वहीं सिन्ध है-

सिन्ध को कोई जुदा नहीं कर सकता सिन्धियों से
सिन्ध सिन्धियों में बसे, सिन्ध यहां, सिन्ध वहां।
देश बनता है मिट्टी से नहीं, लोगों से
'श्याम' बोली जहां सिन्धी जाए, सिन्ध वहां।।

न सिर्फ़ सिन्ध में जन्मे कवियों ने बल्कि भारत में जन्में कवियों ने भी सिन्ध से उस लगाव को महसूस किया है और अपनी कविताओं में उसे ढाला भी है। महेश नेणवाणी, रश्मि रमाणी और विम्मी सदारंगाणी की कविताओं में यह संवेदना दखाई देती है।

विभाजन का दर्द हर आम सिन्धी की तरह कवियों ने भी सहा और उसे अपनी रचनाओं में वाचा दी है। आज़ादी की तुलना सुहागिन के सिंदूर से और वतन की तुलना मांग से करते हुए एम कमल इस तरह दर्द को अभिव्यक्त करते हैं -

हाय हमारी आज़ादी!
सिंदूर मिला, मांग लुट गई।

बिछुड़े हुए हमवतन हिन्दू सिन्धियों को याद करते सिन्ध के कवि शेख अयाज़ कहते हैं –

तुम्हें एक पहेली देता हूं
वह कौन सा पक्षी है
जिसका एक पंख एक देश में
और दूसरा पंख दूसरे देश में है
अगर तुम यह पहेली बूझोगे
तो तुम्हारे नेत्र भरी हुई गागर की भांति छलक पड़ेंगे
और तुम मेरी वेदना समझ सकोगे। [4]

धर्मांधता और सांप्रदायिकता का जो ज़हर फैलाया गया, उसने कहर मचा दिया। ऐसे में कोई कवि क्या महसूस करता होगा, यह शेख अयाज़ की कविता से समझा जा सकता है –

दो देश थे, भूकंप आया, दोनों ढहकर ढेर हो गए
उसके पश्चात् मुसलमान ने अपनी मस्जिद बनाई और
हिन्दू ने अपना मंदिर जोड़ा
और सिख ने गुरूद्वारे का निर्माण किया।
कवि ने अपने लिए एक कब्र खोदी
जहां मस्जिद की अज़ां
मंदिर के शंख
गुरूद्वारे के घंटे
उसकी निद्रा मे विघ्न न डाल सकें।[5]

विस्थापित जीवन और पुनःस्थापन के संघर्ष पर भी कई कविताएं लिखी गई हैं। जिनसे उस वक्त की मनःस्थिति, परायेपन का अहसास, लाचारी, मजबूरी, प्रताड़ना के साथ आत्सम्मान, आत्मविश्वास, मेहनतकशी और हिम्मत दृश्यमान होती है।

भारत में आने पर जब सरकार द्वारा सिन्धियों को कहा गया कि वे अपनी छोड़कर आई ज़मीन, दुकान और घर के एवज़ यहां 'क्लेम' करें तब लेखराज अज़ीज़ ने आहत होकर कहा -

क्या पूछते हो सिन्ध की मिल्कियत का क्लेम
मिल्कियत मेरी सिन्ध है, मेरा हक़ है सिन्ध पर। [6]

रेफ़्यूजी कैंप की नारकीय ज़िंदगी का बेहद मार्मिक और प्रभावशाली चित्रण परसराम ज़िया की कविता 'पोहूअ माउ' में मिलता है जिसमें पोहू की मां कैंप की मुसीबतों का बयान करती है –

कपड़े नदी पर धो रही, नेताओं को कोस रही
मुंह सुजाए धोती है कपड़े, गहरा है यह घाव
कोसती है पोहू की मां।
पीर मेरा विनती सुनेगा, लाल साईं उन्हें सबक सिखाएगा
कैंप में लाकर पटक दिया, देकर आटा पाव
कोसती है पोहू की मां।
सुनती हूं कंबल आए हैं, ज़रूरतमंद को मिलेंगे नहीं
उसे ही मिलेंगे जिसके लंबे होंगे हाथ
कोसती है पोहू की मां। [7]

सजग सिन्धी के लिए यह असमंजसता की स्थिति थी कि वह भारत में रहते अगर भारतवासी हुआ तो उसका 'वतन' कौन सा है। जब कोई अपने 'देश' की बात करे तो सिन्धी क्या जवाब दे। प्रत्येक के मन में अपने गांव, शहर, देश के लिए प्यार और श्रद्धा होती है। सिन्धियों के मन में भी यह जज़्बा था पर यहां आने के बाद सिन्ध का नाम लेने पर उन्हें कई बार कटु अनुभव भी हुए। इंद्र भोजवाणी की यह पंक्तियां इसका उदाहरण हैं –

याद करें गर सिन्ध को, लक़ब मिले 'गद्धार'
गंगा! अमृत धार! ज़हर रक्त में किसने भरा? [8]

ऊंचे स्वर में बोलने वाले कवि हरिकांत ने अपनी कविता को कभी साइलेंसर नहीं लगाया। 'आत्मा-वात्मा' कविता में वे अपने लिए धरती की मांग करते हैं –

अपना उधड़ा आसमान
स्वयं सिल लेंगे।
हमें अपने पैर बोने के लिए
हमारे हिस्से की धरती वापस दो।

जहां एक ओर रोष और आक्रोश का इज़हार है, वहीं शांत मन से परिस्थिति से सांमजस्य बिठाने की कोशिश भी है। सिन्ध की सीमा से सटे कच्छ प्रदेश में रहने वाले हरि दिलगीर एक ग़ज़ल में यही कहते हैं –

सिन्ध माता तो कच्छ भी मौसी है
अब तो जैसे मौसी ही माँ है।

उम्मीदें फिर भी कायम हैं। किसी तरह से यह सरहद की लकीर मिट जाए, बीच की दीवार ढह जाए, भाई भाई से और दोस्त दोस्त से मिल पाए, अपने वतन को देखना नसीब हो। वासुदेव मोही ग़ज़ल के एक शेर में रास्ता बताते हैं -

तुम वहां से एक खिड़की खोलो, मैं दीवार गिराऊं
ख़त्म यों एक पूरी क़ौम का बनवास करें।

'अमन जा आसार' कविता में प्रभु वफ़ा ने दोनों देशों के बीच अमन और भाईचारे की प्रार्थना की है-

बहन यहां और भाई वहां है, रिश्ता यह छूटेगा नहीं
जहां गलियों में मिलकर खेले, दोस्ताना टूटेगा नहीं
ऊंची खड़ी दीवार गिरे, सबको बिछड़ा यार मिले। [9]

भारत के राष्ट्रगीत के जिस एक शब्द ने लंबे अरसे से हलचल मचाई है, वह एक शब्द 'सिन्धु', कईयों के लिए भले पराया हो पर पूरी सिन्धी जाति के लिए यह एक शब्द दिलासा है, आश्वासन है। के. एन. वासवाणी की कविता 'हम सिन्धी' में यह अनुभव किया जा सकता है –

हम सिन्धी जिनका दिल बाग-बाग हो जाता है
जब राष्ट्रगीत में सुनते हैं
'पंजाब सिन्ध गुजरात मराठा'
क्योंकि यह सुन हम विश्वस्त होते हैं
कि हमें, जिन्हें विधाता ने
पूरे राष्ट्र में सर्वाधिक त्याग करने को चुना था
देश नहीं भूला है। ... [10]

अस्मिता का दोहरा संकट वर्तमान समय में सिन्धी जाति पर दिखाई देता है - एक तरफ़ सिन्धी भाषा के विलुप्त होने का भय (भारत के संदर्भ में) और सांस्कृतिक अस्मिता बनाए रखने का प्रश्न। कविताओं में अस्मिता का प्रश्न भी उभर कर आया है।

वर्तमान में घरों में सिन्धी भाषा के घटते चलन से सभी चिंतित हैं पर परिस्थितियां ऐसी हैं कि मार्ग नहीं सूझता। वे बुर्जुर्ग जो सिन्धी के अलावा और कोई भाषा नहीं जानते थे, आज अपने नाती पोतों से बात करने के लिए मजबूरी में टूटी फूटी हिन्दी और अंग्रेज़ी बोलने लगे हैं। यह व्यथा वीना करमचंदाणी ने इस तरह व्यक्त की है –

सिन्धी में बात नहीं करता मेरा बेटा
मेरी मां बात करती है उससे सिन्धी में
तो वह देखने लगता है मुंह।
आखिर हार मान मेरी मां
हिन्दी में बोलने लगती है उससे
मैं अचंभित, स्तब्ध सा
पूछना चाहता हूं
यह क्या मां!
पर मुंह से एक शब्द तक नहीं निकल पाता
मुझे लगता है जैसे मैं गूंगा हो गया हूं। [11]

भाषा के घटते प्रयोग और भूमिरहित संस्कृति के विलुप्त होने का भय भी है। इस दर्द का इज़हार लक्ष्मण कोमल सिन्धी वर्णमाला के प्रथम वर्ण 'अलिफ़' को प्रतीक बनाकर करते हैं –

टूटी स्लेटें, फटी कापियां
जिन पर टेढ़ीमेढ़ी कई लकीरें
'अलिफ़' अकेला, निहत्था
जैसे किसी मुर्दा जाति का मुर्दा पहरेदार।

धीरे धीरे सिन्धी भाषा का प्रचलन घटता जा रहा है। स्कूल, कॉलेज में सिन्धी में शिक्षा का चलन कम हो रहा है, नई पीढ़ी के लेखक न के बराबर हैं। ऐसे में श्याम जयसिंघाणी भाषा के साथ इतिहास और जाति के विलुप्त होने के डर को इस तरह बयान करते हैं –

लाख-महल में अग्निशस्त्र के वार
कौन बचेगा? कौन टिकेगा?
भाषा, जाति और संस्कृति का इतिहास
कौन सा ज़ख़्मी हाथ लिखेगा?

नारायण 'श्याम' ने इस भय को इस तरह ज़ाहिर किया है –

काश! ऐसा न हो कि किताबों में पढ़ें
कि थी सिन्ध और सिन्ध वालों की बोली। [12]

वर्तमान स्थिति ऐसी है कि सिन्धी भाषा न स्कूलों में है, न घरों में। न पाठक उपलब्ध हैं, न प्रकाशक, लेखक हैं जो भाषा को और स्वयं को ज़िंदा रखने की कोशिश में लगे हैं। वासुदेव मोही की कविता 'हत्या' विशेष उल्लेखनीय है। कवि के अनुसार यह हत्या है, भाषा की हत्या है, भाषाई संस्कार की हत्या है –

यह आम हत्या नहीं है.
आम हत्या आसान है.
इस हत्या के लिए
पहले हर माँ की जबान काट दो.
माँ की बोली का एक भी शब्द
किसी भी बच्चे के कानों में न घुले.
फिर हर पिता के आगे
अन्य अहम भाषाओं के ख़ज़ाने खोल दो
ऊंचे ओहदों की फहरिस्त बनाकर
उस भाषा से जोड़ दो.
तुरंत रसूख़ चलाकर
आकाशवाणी, दूरदर्शन से
प्रसारित होने वाले
इस भाषा के सभी कार्यक्रम बंद करा दो. [13]

पुरानी पीढ़ी और वर्तमान पीढ़ी के बीच एक पीढ़ी का अंतर गहरी खाई जैसा हो गया है क्योंकि उस समय की पीढ़ी रोज़ी रोटी और सर पर छत का बंदोबस्त करने में संघर्षरत थी और इस परिस्थिति में भाषा और संस्कृति की भौगोलिक विरासत की अनुपस्थिति में, नई पीढ़ी संस्कृति की वैचारिक और भावात्मक विरासत से भी वंचित रह गई। विम्मी सदारंगाणी की कविता 'बाबा की बुदबुदाहट' में यह विडंबना भी चित्रित हुई है जब घर का बुज़र्ग सिन्ध को याद कर रहा है, अपने मित्रों को याद कर रहा है, छटपटाकर बार बार घर से निकल जाता है, तब घर के सदस्य इसे बुढ़ापे का रोग मानने लगते हैं –

बाबा की यह बुदबुदाहट सुनते तो हैं हम
हमारी समझ में नहीं आती।
वह भाग निकलें, हम फिर पकड़ आएं
बस यही सिलसिला चला आ रहा है वर्षों से।
गालियां देंगे, रोएंगे, बिसूरेंगे
नाक बहती रहेगी, आंसू बहते रहेंगे
पोंछने के लिए यह मैला कुचला लाल रूमाल-सा
चिथड़ा ही उठाएंगे!
न जाने कौन बख़्शा, कौन मुहम्मद!
विक्टोरिया पाकिस्तान कब पहुंची!
भगवान ही जाने...
बाबा पर तरस भी आता है।
पर क्या किया जाए, बुढ़ापा है।[14]

सारांश

भारत का विभाजन एक भौगोलिक, राष्ट्रीय, भावात्मक, विचारात्मक बंटवारा था जिसका सिन्धी जाति पर ऐसा मारक प्रभाव हुआ है कि भाषा और संस्कृति को बचाने की लाख कोशिशों के बावजूद अपनी अस्मिता खोती सिन्धी जाति इस संकट का अहसास होते भी भौगालिक बिखराव और पीढ़ीगत अंतर जैसी परिस्थितयों में कुछ अधिक कर नहीं पा रही। नई पीढ़ी अन्य भाषाएं पढ़कर, सीखकर खुश है। एक बड़े हिस्से को अपनी समृद्ध विरासत की जानकारी ही नहीं, इसलिए उसके खतरे में होने की कोई चिंता नहीं, और उसके बचाव की कोई ठोस कोशिश भी नहीं। निस्संदेह, सिन्धी कविता इन सभी भावनाओं को मार्मिक रूप से अभिव्यक्ति करने में सफल हुई है।

संदर्भ

[1]. सतीश रोहरा, अनु. वासुदेव सिन्धुभारती, अपनी जन्मभूमि से उखड़ने की व्यथा, सुरभि नवंबर 2000. पृष्ठ 65
[2]. अर्जुन हासिद, मोगो, ग़ज़ल 7
[3]. इंद्र भोजवाणी, अनु. विम्मी सदारंगाणी, सुहिणी सिंधुड़ी, विरहाड़ो, सिन्धी अकादमी, 1998. पृष्ठ 20
[4]. शेख अयाज़, वासुदेव सिन्धुभारती, क्रांति दृष्टा शेख अयाज़, सुरभि, अप्रैल 2001. पृष्ठ 39

[5]. शेख अयाज़, वासुदेव सिन्धुभारती, क्रांति दृष्टा शेख अयाज़, सुरभि, अप्रैल 2001. पृष्ठ 39

[6]. लेखराज अज़ीज़, अनु. विम्मी सदारंगाणी, सिंधु जी सिक, विरहाङे खां पोइ जे सिन्धी शइर जी चूंड, साहित्य अकादमी, 1987. पृष्ठ 1

[7]. परसराम ज़िया, अनु. विम्मी सदारंगाणी, पोहूअ माउ, विरहाङे खां पोइ जे सिन्धी शइर जी चूंड, साहित्य अकादमी, 1987. पृष्ठ 23

[8]. इंद्र भोजवाणी, अनु. विम्मी सदारंगाणी, सिन्ध ऐं सिन्धी, विरहाङे खां पोइ जे सिन्धी शइर जी चूंड, साहित्य अकादमी, 1987.

[9]. प्रभु वफ़ा, अनु. विम्मी सदारंगाणी, अमन जा आसार, विरहाङे खां पोइ जे सिन्धी शइर जी चूंड, साहित्य अकादमी, 1987. पृष्ठ 57

[10]. के एन वासवाणी, हम सिन्धी, सुरभि साहित्यिक पत्रिका, अप्रैल 2009. पृष्ठ 53

[11]. वीना करमचंदाणी, गूंगी पीढ़ी, सुरभि साहित्यिक पत्रिका, नवंबर 2006. पृष्ठ 92

[12]. नारायण श्याम, अनु. विम्मी सदारंगाणी, ग़ज़ल, विरहाङे खां पोइ जे सिन्धी शइर जी चूंड, साहित्य अकादमी, 1987.

[13]. वासुदेव मोही, अनु. विम्मी सदारंगाणी, हत्या. sindhi-literature.blogspot.in

[14]. विम्मी सदारंगाणी, बाबा की बुदबुदाहट, सवाल की तलाश में, विभा प्रकाशन, 2011. पृष्ठ 96